निकसी घौंघी सागर मथा । भई हींगवाले की कथा ॥
लेखा किया रूखतल बैठि । पूंजी गई गांड़ि मैं पैठि ॥ ३६५ ॥

दो वर्ष के परिश्रम के बाद बनारसी को कुछ भी न मिला, मानो सागर मथने पर घोंगी निकली हो । बनारसी के साथ वही हुआ जो कहानी में हींगवाले[२४] के साथ हुआ था—वह हिसाब करने पेड़ के नीचे बैठा, तो उसे पता चला कि उसकी पूंजी, हींग, उसके भीतर चली गई है ।

सो बनारसी की गति भई । फिरि आई दरिद्रता नई ॥
बरस डेढ़ लौं नाचे भले । ह्वै खाली घर कौं उठि चले ॥ ३६६ ॥

बनारसी की भी ऐसी ही दशा हुई । उनके जीवन में फिर से दरिद्रता आई । डेढ़ वर्ष तक वे पैसे कमाने के लिए नाचे थे, अब ख़ाली हाथ घर लौट रहे थे ।

एक दिवस फिरि आए हाट । घर सौं चले गली की बाट ॥
सहज दिष्टि कीनी जब नीच । गठरी एक परी पथ बीच ॥ ३६७ ॥

एक दिन बनारसी दुकान से गली के रास्ते घर लौट रहे थे कि उन्हें रास्ते के बीच एक गठरी पड़ी दिखी ।

[२४] इस अभागे हींगवाले की कहानी बनारसी के समय में प्रचलित रही होगी । इस कहानी के बारे में और कुछ पता नहीं चला ।

सो बनारसी लई उठाइ । अपने डेरे खोली आइ ॥
मोती आठ और किछु नांहि । देखत खुसी भए मन मांहि ॥ ३६८ ॥

बनारसी ने गठरी उठा ली और अपने घर पहुंचकर उसे खोला । गठरी में आठ मोती थे, उनके सिवाय और कुछ नहीं था । मोती देख बनारसी के मन में बहुत ख़ुशी हुई ।

ताइत एक गढ़ायौ नयौ । मोती मेले संपुट दयौ ॥
बांध्यौ कटि कीनौ बहु यत्न । जनु पायौ चिंतामनि रत्न ॥ ३६९ ॥

बनारसी ने एक नया तावीज़ बनवाया, और मोतियों को उसके भीतर छिपा दिया । बनारसी ने तावीज़ बड़ी सावधानी से अपनी कमर पर बांध लिया । मोती पाकर उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे उन्हें चिंतामणि मिल गया हो ।

अंतरधनु राख्यौ निज पास । पूरब चले बनारसिदास ॥
चले चले आए तिस ठांउ । खराबाद नाम जहां गांउ ॥ ३७० ॥

मोतियों को अपने पास छिपाकर, बनारसीदास आगरा छोड़ पूर्व की ओर चले । चलते-चलते वे उस स्थान पर पहुंचे जहां खैराबाद नाम का नगर था ।

कल्ला साहु ससुर के धाम । संध्या आइ कियौ विश्राम ॥
रजनी बनिता पूछै बात । कहौ आगरे की कुसलात ॥ ३७१ ॥

खैराबाद में बनारसी ने अपने ससुर कल्ला साहु—कल्याणमल—के घर पहुंचकर आराम किया । वहां पहुंचते-पहुंचते संध्या हो गई थी । रात को बनारसी की पत्नी ने उनसे पूछा, "कहो आगरे में कैसा रहा ?"

कहै बनारसि माया बैन । बनिता कहै झूठ सब फैन ॥
तब बनारसी सांची कही । मेरे पास कछू नहिं सही ॥ ३७२ ॥

बनारसी ने झूठी बातें बताईं, पर उनकी पत्नी ने मानी नहीं और कहा कि उनकी बातें सब झूठी थीं । तब बनारसी ने सच-सच बताया कि "मेरे पास कुछ नहीं है ।

जो कछु दाम कमाए नए । खरच खाइ फिरि खाली भए ॥
नारी कहै सुनौ हो कंत । दुख सुख कौ दाता भगबंत ॥ ३७३ ॥

"जो कुछ मैंने कमाया था, वह मैंने ख़र्च खाया और फिर से ख़ाली हो गया ।" बनारसी की पत्नी ने कहा, "सुनो ओ कांत । दुख-सुख का दाता तो भगवान है ।

दोहरा

समौ पाइ कै दुख भयौ समौ पाइ सुख होइ ।
होनहार सो ह्वै रहै पाप पुन्न फल दोइ ॥ ३७४ ॥

"समय पर दुख मिलता है, और समय पर सुख । जो होना होता है वह तो होकर ही रहेगा । पाप और पुण्य, दोनों के फल भुगतने पड़ते हैं ।"

चौपई

कहत सुनत अर्गलपुर बात । रजनी गई भयौ परभात ॥
लहि एकंत कंत के पानि । बीस रुपैया दीए आनि ॥ ३७५ ॥

आगरे की बातें कहने सुनने में रात बीत गई और सुबह हो गई । बनारसी की पत्नी ने अकेले में अपने पति का हाथ लिया और उसमें बीस रुपए रख दिए ।

ए मैं जोरि धरे थे दाम । आए आज तुम्हारे काम ॥
साहिब चिंत न कीज कोइ । पुरुष जिए तो सब कछु होइ ॥ ३७६ ॥

पत्नी ने कहा, "ये पैसे मैंने बचाकर रखे थे । आज ये तुम्हारे काम आए । स्वामी, तुम कोई चिंता मत करो । अगर पुरुष ज़िंदा हो तो सब कुछ है ।"

यह कहि नारि गई मां पास । गुपत बात कीनी परगास ॥
माता काहू सौं जिनि कहौ । निज पुत्री की लज्जा बहौ ॥ ३७७ ॥

यह कहकर बनारसी की पत्नी अपनी मां के पास गई और उन्हें ये सारी गुप्त बातें बताते हुए कहा, "मां, जो बातें मैं तुम्हें बताऊंगी, ये बातें किसी से नहीं कहना । अपनी पुत्री की लाज रखना ।

दोहरा

थोरे दिन मैं लेहु सुधि तो तुम मा मैं धीय ।
नाहीं तौ दिन कैकु मैं निकसि जाइगौ पीय ॥ ३७८ ॥

"तुम मेरी मां हो, मैं तुम्हारी बेटी । तुम शीघ्र ही कुछ उपाय निकालो, नहीं तो कुछ ही दिनों में मेरा पति यहां से निकल जाएगा, हमें छोड़कर चला जाएगा ।

चौपई

ऐसा पुरुष लजालू बड़ा । बात न कहै जात है गड़ा ॥
कहै माइ जिनि होइ उदास । द्वै सै मुद्रा मेरे पास ॥ ३७९ ॥

"यह पुरुष बहुत लजीला है, कुछ कहता नहीं है, पर कष्ट से गड़ा जा रहा है ।" मां ने पुत्री से कहा, "तू उदास मत हो । मेरे पास दो सौ मुद्राएं हैं ।

गुपत देउं तेरे कर मांहि । जो वै बहुरि आगरे जांहि ॥
पुत्री कहै धन्य तू माइ । मैं उनकौं निसि बूझा जाइ ॥ ३८० ॥

"ये मैं चुपके से तेरे हाथ में दूंगी, जिससे वह दोबारा आगरा जा सके।" पुत्री ने कहा, "तू धन्य है, मां ! मैं आज रात को ही उनका इरादा पूछूंगी।"

रजनी समै मधुर मुख भास । बनिता कहै बनारसि पास ॥
कंत तुम्हारौ कहा बिचार । इहां रहौ कै करौ बिहार ॥ ३८१ ॥

रात को बनारसी की पत्नी ने उनसे मीठे शब्दों में पूछा, "ओ कांत, तुम्हारा क्या विचार है ? तुम यहां रहोगे या व्यापार करोगे ?"

बानारसी कहै तिय पांहि । हम तू साथ जौनपुर जांहि ॥
बनिता कहै सुनहु पिय बात । उहां महा बिपदा उतपात ॥ ३८२ ॥

बनारसी ने अपनी स्त्री से कहा, "हम और तू दोनों जौनपुर चलते हैं।" पर पत्नी ने कहा, "पिया, बात सुनो। जौनपुर में बहुत गड़बड़ चल रही है, बहुत दंगे हो रहे हैं।

तुम फिर जाहु आगरे मांहि । तुम कौं और ठौर कहुं नांहि ॥
बानारसी कहै सुन तिया । बिनु धन मानुष का धिग जिया ॥ ३८३ ॥

"तुम फिर से आगरे जाओ। इस समय तुम्हारे लिए और कोई स्थान कहीं नहीं है।" बनारसी ने कहा, "सुन तिया, बिना धन के मनुष्य का जीवन धिक्कार है।"

दे धीरज फिरि बोलै बाम । क़रहु खरीद दैउं मैं दाम ॥
यह कहि दाम आनि गनि दिए । बात गुपत राखी निज हिए ॥ ३८४ ॥

बनारसी की पत्नी उन्हें धीरज देते हुए फिर बोली, "तुम्हें जो माल चाहिए, तुम ख़रीदो। दाम मैं देती हूं।" यह कहकर उसने अपनी माता की दी हुई दो सौ मुद्राएं लाकर और गिनकर बनारसी को दे दीं। यह बात उसने अपने हृदय में गुप्त रखी।

तब बनारसी बहुरौ जगे । एती बात करन कौं लगे ॥
करैं खरीद धोवाबैं चीर । ढूंढ़ैं मोती मानिक हीर ॥ ३८५ ॥

तब बनारसी फिर से जागे। उन्होंने कई कार्य आरंभ किए। उन्होंने कपड़ा ख़रीदा और बेचने की तैयारी में उसे धुलवाया, और बाज़ार में ख़रीदने लायक़ मोती, मानिक और हीरे ढूंढ़ने शुरू किए।

जोरहिं अजितनाथ के छंद । लिखहिं नाममाला भरि बंद ॥
च्यारौं काज करहिं मन लाइ । अपनी अपनी बिरिया पाइ ॥ ३८६ ॥

बनारसी ने 'अजितनाथ के छंद' जोड़े, और 'नाममाला' के अनेक पद लिखे। उन्होंने चारों कार्य मन लगाकर और समय पाकर किए।

इहि बिधि च्यारि महीनें गए । च्यारि काज संपूरन भए ॥
करी नाममाला सै दोइ । राखे अजित छंद उरपोइ ॥ ३८७ ॥

इस तरह चार महीने चले गए । चारों कार्य पूरे हो गए । 'नाममाला', जिसमें दो सौ छंद हैं, और 'अजितनाथ के छंद', दोनों की रचना पूरी हो गई थी ।

कपरा धोइ भयौ तैयार । लियौ मोल मोती कौ हार ॥
अगहन मास सुकल बारसी । चले आगरै बानारसी ॥ ३८८ ॥

कपड़ा धुलकर बेचने लायक़ तैयार हो गया था और बनारसी ने एक मोतियों का हार भी ख़रीद लिया । अगहन महीने के शुक्ल पक्ष के बारहवें दिन बनारसी आगरे की ओर चले ।

दोहरा

बहुरौं आए आगरै फिरि कै दूजी बार ।
तब कटले परबेज के आनि उतारयौ भार ॥ ३८९ ॥

बनारसी फिर से घूमकर दूसरी बार आगरे आए । इस बार उन्होंने परवेज़ कटरे में सामान उतारा ।

चौपई

कटले मांहि ससुर की हाट । तहां करहि भोजन कौ ठाठ ॥
रजनी सोबहिं कोठी मांहि । नित उठि प्रात नखासे जांहि ॥ ३९० ॥

परवेज़ कटरे में बनारसी के ससुर की दुकान थी । बनारसी ने वहां ही अपने खाने-पीने का प्रबंध किया । वे रात को भी वहीं सोते थे । वे प्रतिदिन सुबह उठकर बाज़ार जाते थे ।

फरि बैठहिं बहु करै उपाइ । मंदा कपरा कछु न बिकाइ ॥
आवहि जाहि करहि अति खेद । नहि समुझै भावी कौ भेद ॥ ३९१ ॥

जो कपड़ा बनारसी ने ख़रीदा था वह घटिया था, थोड़ा सा भी नहीं बिका । बनारसी ने फिर बहुत उपाय सोचे, बहुत आना-जाना किया, बहुत कष्ट उठाया, पर वे कपड़ा नहीं बेच पाए । वे अब भी भाग्य के भेद को नहीं समझ सके थे ।

दोहरा

मोती हार लियौ हुतौ दै मुद्रा चालीस ।
सौ बेच्यौ सत्तरि उठे मिले रुपइआ तीस ॥ ३९२ ॥

बनारसी ने जो मोतियों का हार लिया था, उन्होंने उसके लिए चालीस रुपए दिए थे । वही हार उन्होंने बेचा और सत्तर रुपए उठाए—उन्हें ऊपर से तीस रुपए मिले ।

चौपई

तब बनारसी करै बिचार । भला जबाहर का ब्यापार ॥
हुए पौन दूनें इस मांहि । अब सौ बस्त्र खरीदहि नांहि ॥ ३९३ ॥

तब बनारसी ने सोचा कि जवाहरात का व्यापार अच्छा है । इस में तो जो दिया था उसके ऊपर और पौना मिला है । अब से वे कपड़ा ख़रीदेंगे ही नहीं ।

च्यारि मास लौं कीनी धंध । नहिं बिकाइ कपरा पग बंध ॥
बैनीदास खोबरा गोत । ताकौ दास नरोत्तम पोत ॥ ३९४ ॥

बनारसी ने चार महीने तक धंधा किया, पर कपड़ा बिका ही नहीं और उनके पैरों पर बेड़ियों की तरह बंध गया । बेनीदास खोबरा गोत्र के थे । उनका पोता नरोत्तमदास था ।

दोहरा

सो बनारसी कौ हितू और बदलिआ थान ।
रात दिवस क्रीड़ा करहिं तीनौं मित्र समान ॥ ३९५ ॥

नरोत्तमदास और थानमल बदलिआ बनारसी के मित्र बन गए । तीनों मित्र रात-दिन एक साथ आनंद उठाते ।

चौपई

चढ़ि गाड़ी पर तीनौं डौल । पूजा हेतु गए भर कौल ॥
कर पूजा फिरि जोरे हाथ । तीनौं जनें एक ही साथ ॥ ३९६ ॥

एक दिन तीनों मित्र गाड़ी पर चढ़े और प्रतिज्ञा कर पूजा करने गए । तीनों जनों ने एक साथ हाथ जोड़कर पूजा की ।

प्रतिमा आगै भाखैं एहु । हम कौं नाथ लच्छिमी देहु ॥
जब लच्छिमी देहु तुम तात । तब फिरि करहिं तुम्हारी जात ॥ ३९७ ॥

प्रतिमा के आगे तीनों ने कहा, "नाथ, हमें लक्ष्मी दो । जब तुम हमें लक्ष्मी दोगे, ओ तात, तब हम फिर से तुम्हारी जात देंगे ।"

यह कहिक आए निज गेह । तीनौं मित्र भए इक देह ॥
दिन अरु रात एकठे रहैं । आप आपनी बातैं कहैं ॥ ३९८ ॥

यह कहकर तीनों अपने घर लौट आए । तीनों की मित्रता बढ़ती गई; वे एक दूसरे के इतने क़रीब हो गए मानों तीनों की एक ही देह हो । वे दिन-रात इकट्ठे रहते, आपस में अपनी-अपनी बातें कहते ।

आयौ फागुन मास बिख्यात । बालचंद की चली बरात ॥
ताराचंद मौठिया गोत । नेमा कौ सुत भयौ उदोत ॥ ३९९ ॥

फाल्गुन का महीना आया और बालचंद की बरात चलने को तैयार हुई । नेमा के पुत्र ताराचंद, जो मोठिया गोत्र के थे, प्रकट हुए ।

कही बनारसि सौं तिन बात । तू चलु मेरे साथ बरात ॥
तब अंतरधन मोती काढ़ि । मुद्रा तीस और द्वै बाढ़ि ॥ ४०० ॥

उन्होंने बनारसी से कहा, "तू मेरे साथ बरात में चल ।" तब बनारसी ने वे मोती निकाले जो उन्होंने बचाकर रखे थे । मोती बेचकर उन्हें बत्तीस रुपए मिले ।

बेंचि खोंचि कै आनैं दाम । कीनौ तब बराति कौ साम ॥
चले बराति बनारसिदास । दूजा मित्र नरोत्तम पास ॥ ४०१ ॥

बनारसी ने सब बेच-बाचकर पैसे इकट्ठे किए । फिर, अन्य बरातियों के साथ, बराती बनारसीदास भी चले । उनका दूसरा मित्र नरोत्तमदास भी साथ था ।